<u>भारत के सर्वोच्च न्यायालय में</u>

गोविंदम्मल (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधि **और अन्य...** अपीलकर्ता

बनाम

वैद्यनाथन और अन्य। ...उत्तरदाता

(सिविल अपील सं. 2008 का 5276)

23 अक्टूबर, 2018 को

[एनवी रमण और मोहन एम. शांतानागौदार जे. जे.]

मोहन एम. शांतानागौदार, जे. 1. अधीनस्थ न्यायाधीश, कुड्डालोर के समक्ष वाद संख्या ओएस 45/85 में मूल प्रतिवादी के कानूनी प्रतिनिधि इस न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता हैं। सुविधा के लिए, पार्टियों को ट्रायल कोर्ट के समक्ष उनकी स्थिति के अनुसार संबोधित किया जाता है।

2 यह मुकदमा प्रतिवादियों द्वारा दायर किया गया था, जिसमें यह घोषणा करने की मांग की गई थी कि 'अनुसूची ए' मे वर्णित संपत्ति (जैसा कि वादपत्र में वर्णित है) उनकी है या वैकल्पिक अनुतोष के लिए कि"अनुसूची बी" मे वर्णित संपत्ति में आधे हिस्से के विभाजन के लिए (जैसा कि वादपत्र में वर्णित है) जिसका एक हिस्सा 'अनुसूची ए' है। वादी (यहाँ उत्तरदाताओं) के अनुसार, संपत्तियाँ मूल रूप से दो भाइयों, पज़ानिवेलु मुदलियार और चोकालिंगम की थीं तथा पज़ानिवेलु मुदलियार के दो बेटे थे, जिनका नाम नारायणस्वामी मुदलियार और मनिकम था। नारायणस्वामी का एक बेटा था जिसका नाम ज्ञानसंबंदम मुदलियार था। वादी ज्ञानसंबंदम के पुत्र तथा नारायणस्वामी के पोते हैं। दिनांक 21.7.1912 को, पज़ानिवेलु और चोकलिंगम की शाखाओं के बीच विभाजन हुआ, और उस पर नारायणस्वामी (चूंकि पज़ानिवेलु तब तक मर चुका था) और चोकलिंगम ने हस्ताक्षर किए थे। उक्त विभाजन में, 'अनुसूची ए' मे वर्णित संपत्ति नारायणस्वामी और मनिकम (जो उस समय नाबालिग थे) को आवंटित की गई थी, जबकि 'अनुसूची बी' मे वर्णित संपत्ति में बची संपत्ति का शेष 50% चोकलिंगम को आवंटित किया गया था। यहां यह नोट करना प्रासंगिक है कि वर्ष 1912 में विभाजन के समय वाद की संपत्ति पूरी तरह से 3.18 एकड़ मापी गई थी, जो बाद में प्राकृतिक आपदाओं, कुछ हिस्सों की बिक्री और पुनर्वास आदि के मद्देनजर घटकर 2.72 एकड़ रह गई। इस प्रकार, प्रत्येक का प्रत्येक शाखा का हिस्सा घटाकर 1.36 एकड़ रह गया। संपत्ति में सर्वे संख्या 67 शामिल थी। दिनांक 5.4.1933 को नारायणस्वामी और मनिकम, पज़ानिवेलु मुदलियार के पुत्र होने के नाते, अपने पिता की शाखा को आवंटित संपत्ति का विभाजन इस तरह से किया ताकि 'अनुसूची ए' मे वर्णित पूरी संपत्ति मनिकम को आवंटित की जा सके, प्रदर्श ए–39 के अनुसार। प्रदर्श ए–2 के अनुसार, दिनांक 11.9.1940 को मनिकम के पक्ष में आवंटित उक्त संपत्ति उनके द्वारा अप्पावु मुदलियार को बेच दी गई थी। दिनांक 26.2.1942 को, अप्पावु मुदलियार द्वारा खरीदी गई संपत्ति को संबंदम मुदलियार के पक्ष में बेच दिया गया था। प्रदर्श ए –3 के अनुसार, दिनांक 9.2.1950 को, संबंधम मुदलियार द्वारा खरीदी गई संपत्ति नारायणस्वामी मुदलियार को बेच दी गई थी। वर्ष 1965 में नारायणस्वामी मुदलियार की मृत्यु के बाद, नारायणस्वामी मुदलियार के पोते होने के नाते वादी को'अनुसूची ए' मे वर्णित पूरी संपत्ति विरासत में मिली।

इस बीच, चोकलिंगम का आधा हिस्सा दिनांक 21.12.1933 को एक अदालती नीलामी में बेच दिया गया और जो मूल प्रतिवादी के पिता द्वारा खरीदा गया। यह दिखाने के लिए कोई दस्तावेज़ नहीं है कि अदालती नीलामी बिक्री के परिणामस्वरू किसी भी समय पर कब्जे की सुपुर्दगी हुई थी, अदालत की बिक्री निर्णयऋणी के अधिकार, स्वामित्व और हित से अधिक प्रदान नहीं कर सकती है, अर्थात् चोकलिंगम का आधा हित, जो कि पुनर्वसन में दर्ज 2.72 एकड़ में से 1.36 एकड़ है। दुर्भाग्य से 'अनुसूची बी' मे वर्णित संपूर्ण संपत्ति जिसका वर्ष 1912 में विभाजन किया गया था, उसका कभी भी सीमांकन नहीं किया गया क्योंकि इसका उपयोग हमेशा एक गृह स्थल के रूप में किया जाता था। वर्ष 1976 में पुनर्वसन कार्यवाही के बाद से, इस संपत्ति में तीन पट्टा संख्याएँ शामिल हैं। वादी के पिता भी हाउस टैक्स भरते आ रहे हैं। प्रतिवादी को 'अनुसूची ए' मे वर्णित संपत्ति में कोई अधिकार नहीं था। प्रतिवादी के पिता और परिणामस्वरूप प्रतिवादी का चोकलिंगम के आधे हिस्से, यानी 1.36 एकड़ से

अधिक की संपत्ति पर कोई अधिकार नहीं था। प्रदर्श ए–40 के अनुसार, दिनांक 5.11.1978 को, वादी और उनके पिता के परिवार में विभाजन में, 'अनुसूची ए' मे वर्णित संपत्ति को वादी संख्या 2 को आवंटित किया गया था। चूंकि प्रतिवादी ने मुकदमे की संपत्ति के दक्षिण पश्चिमी हिस्से (जो 'अनुसूची ए' मे वर्णित संपत्ति के अंतर्गत आता है) में अतिक्रमण करने का प्रयास किया और वादी को इसका आनंद लेने से रोका, इस के बाद मुकदमा दायर किया गया।

प्रतिवादी का मामला यह है कि उसके पिता नेदिनांक 21.12.1933 को एक अदालती नीलामी (1918 के ओएसनंबर 20 में डिक्री के निष्पादन में) में सर्वेक्षण संख्या 67 की पूरी जमीन, यानी 2.72 एकड़ खरीदी थी, जिसकी पुष्टि दिनांक 29.9.1934 को हुई थी और कब्ज़ा उसे सौंप दिया गया था। वर्ष 1940 में अपने पिता की मृत्यु के बाद, प्रतिवादी का कब्ज़ा जारी रहा। वर्ष 1975 में, श्री पुथुमरिअम्मन मंदिर, कुरिन्जिपदी ने उक्त संपत्ति के संबंध में प्रतिवादी और ज्ञानसंबंदम मुदलियार (वादी के पिता) के खिलाफ एक वाद ओएस नंबर 66/1975 दायर किया। उक्त मुकदमा यह कहते हुए खारिज कर दिया गया कि मंदिर का संपत्ति पर कोई अधिकार नहीं था और प्रतिवादी और उसके पिता का स्वामित्व था। मंदिर की ओर से दायर अपील भी खारिज कर दी गई। इस प्रकार, प्रतिवादी और उसके पिता के स्वामित्व को मुकदमे में बरकरार रखा गया था, जिसमें वादी के पिता प्रतिवादी के साथ–साथ एक सह–प्रतिवादी थे, जैसा कि ऊपर बताया गया है। इसके बाद, एसकेवी हाई स्कूल ने संपत्ति पर अपने स्वामित्व की घोषणा के लिए एक वाद ओएस नंबर 1289/1974 दायर किया, जिसमें दावा किया गया कि उसे पूरी संपत्ति पर अधिकार मिल गया है। प्रतिवादी ने एसकेवी हाई स्कूल के खिलाफ एक वाद ओएस नंबर 1290/1974 दायर किया। वादी के पिता स्कूल द्वारा दायर ओएस नंबर 1289/1974 में प्रतिवादियों में से एक थे, जबकि उन्हें ओएस नंबर 1290/1974 में प्रतिवादी द्वारा उसे पक्षकार नहीं बनाया गया था। दोनों मुकदमों में संयुक्त सुनवाई के बाद , वर्तमान प्रतिवादी द्वारा दायर मुकदमे को न्यायालय द्वारा डिक्री किया गया और मुकदमे की संपत्ति पर प्रतिवादी का अधिकार घोषित करने का आदेश दिया गया, और स्कूल द्वारा दायर मुकदमे को खारिज कर दिया गया। अपील में भी विचारण न्यायालय के फैसले की पुष्टि की गई । प्रतिवादी ने अपने लिखित कथन में दिनांक 11.9.1940 और 9.2.1950 के विक्रय विलेखो से इनकार किया। यहां तक कि बाद के विभाजन दिनांक 5.11.1978 को भी धोखाधड़ी और मिलीभगत से किए गए लेनदेन के रूप में हमला किया गया था। प्रतिवादी ने दावा किया कि अदालती नीलामी की तारीख से यानी वर्ष 1933 से लगातार पूरी संपत्ति पर उसका विशेष कब्ज़ा है, और उसने प्रतिकूल कब्ज़े से अधिकार हासिल कर लिया है। प्रतिवादी द्वारा यह भी दलील दी गई थी कि प्रतिवादी का स्वामित्व पहले ही सिविल कोर्ट द्वारा दो बार घोषित किया जा चुका है और इसलिए, वर्तमान मुकदमा रेस ज्यूडिकाटा के सिद्धांतों द्वारा वर्जित है। वादीगण द्वारा संयुक्त कब्जे के दावे को प्रतिवादी द्वारा अस्वीकार कर दिया गया।

3. पूर्ण सुनवाई के बाद, विचारण न्यायालय ने मुकदमे का फैसला सुनाया और विभाजन की वैकल्पिक राहत दी और वाद को डिक्री किया। प्रतिवादी द्वारा दायर की गई पहली अपील में, विद्वान एकल न्यायाधीश ने विचारण न्यायालय के फैसले को पलट दिया और मुकदमा खारिज कर दिया। वादी द्वारा दायर लेटर्स पेटेंट अपील को आक्षेपित निर्णय द्वारा अनुमति दी गई थी और परिणामस्वरूप उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा मुकदमे पर फैसला सुनाया गया।

4. अपीलकर्ताओं/ प्रतिवादी के विधिक प्रतिनिधि की ओर से उपस्थित श्री वी. प्रभाकर ने प्रस्तुत किया कि विभाजन का मुकदमा सुनवाई योग्य नहीं है क्योंकि वादी के अनुसार , उनके पूर्वज पज़ानिवेलु मुदलियार और उनके भाई चोकलिंगम की शाखाओं के बीच वर्ष 1912 में विभाजन हुआ था। वर्ष 1933 में अदालत द्वारा आयोजित नीलामी बिक्री वादी और उनके पूर्ववर्तियों द्वारा निर्विवाद रही, चूंकि पूरी संपत्ति नीलामी में बेची गई थी, इसलिए संपत्ति का खरीदार होने के नाते प्रतिवादी पूरी संपत्ति का हकदार था। यह प्रस्तुत किया गया था कि संपूर्ण संपत्ति के संबंध में मंदिर और स्कूल द्वारा दायर पहले के मुकदमों में, वादी के पिता, प्रतिवादी के पिता के साथ सह–प्रतिवादी थे और उन्होंने इस आशय का साक्ष्य दिया था कि संपूर्ण संपत्ति प्रतिवादी के पिता द्वारा अदालती नीलामी के माध्यम से खरीदा गया था, और प्रतिवादी के पिता उसके मालिक के रूप में कब्जे में थे। इस तरह के सभी विवादों का निर्णय प्रतिवादी के पिता के पक्ष में दिया गया और उनके स्वामित्व को बरकरार रखा, और इसलिए पूर्व–न्याय के सिद्धांतों के संचालन के साथ–साथ विबंध के संचालन से, यह कहा जा सकता है कि प्रतिवादी और

उसके पिता को संपत्ति का मालिकाना हक था और परिणामस्वरूप, वादी का 'अनुसूची ए' मे वर्णित संपत्ति पर कोई अधिकार नहीं था। यह भी तर्क दिया गया कि प्रतिवादी और उसके पिता निर्बाध कब्जे में रहे और वर्ष 1933 के बाद से लगातार और खुले तौर पर अधिकार का दावा कर रहे थे, और इसलिए यह कहा जा सकता है कि प्रतिवादी ने प्रतिकूल कब्जे के आधार पर अपना स्वामित्व पूरा कर लिया है।

इसके विपरीत, उत्तरदाताओं/वादी की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्रीमती. वी. मोहना ने कहा कि वादी के पिता और प्रतिवादी के पिता के बीच पारस्परिक स्वामित्व के संबंध में किसी भी विवाद का प्रश्न पहले के किसी भी मुकदमे में नहीं था और इसलिए वादी के दावे के संबंध में पुनर्न्यायिकता के सिद्धांतों को आकर्षित करने का कोई सवाल ही नहीं था। इसी प्रकार, प्रतिवादी के पिता के अधिकार के संबंध में वादी के पिता की स्वीकारोक्ति एक विबंध के रूप में काम नहीं कर सकती क्योंकि यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रतिवादी और उसके पिता ने किसी भी स्वीकारोक्ति के आधार पर उनके हितों को नुकसान पहुंचाने का काम किया है, अन्यथा भी, ऐसे स्वीकारोक्ति को संतोषजनक ढंग से समझाया जा सकता है। चूँकि दो भाइयों पज़ानिवेलु और चोकालिंगम की शाखाओं के बीच विभाजन, जो वर्ष 1912 में एक पंजीकृत विभाजन विलेख के माध्यम से हुआ था, विवाद में नहीं था, 50% हिस्सा पज़ानिवेलु मुदलियार के कानूनी उत्तराधिकारियों, यानी वादी के पास निहित था। यह प्रतिवादी पर निर्भर था कि वह दलील दे और साबित करे कि वादी को छोड़कर संपत्ति के 50% हिस्से पर उसका विशेष कब्जा था, जो अपेक्षित अवधि के लिए वादी के हित के प्रतिकूल था, अन्यथा प्रतिकूल कब्जे से अधिकार प्राप्त करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

5. इसमें कोई विवाद नहीं है कि 3.18 एकड़ (अब घटकर 2.72 एकड़) की पूरी संपत्ति का स्वामित्व दो भाइयों, पज़ानिवेलु और चोकलिंगम के पास था। यह भी विवाद में नहीं है कि दिनांक 21.7.1912 को दोनों भाइयों यानी चोकलिंगम और उनके भाई के बेटे नारायणस्वामी मुदलियार के परिवारों के बीच एक पंजीकृत विभाजन के माध्यम से एक विभाजन हुआ (चूंकि पज़ानिवेलु की मृत्यु हो चुकी थी) जिसके तहत उनमें से प्रत्येक को संपत्ति का 50% हिस्सा मिला जो अंततः प्रत्येक 1.36 एकड़ था। यह देखने की आवश्यकता नहीं है कि उक्त नारायणस्वामी मुदलियार पज़ानिवेलु मुदलियार के पुत्र हैं। इसके बाद, दिनांक 5.4.1933 को पज़ानिवेलु के दो बेटों, नारायणस्वामी और मनिकम के बीच उपरोक्त 1.36 एकड़ के संबंध में आगे विभाजन हुआ, यानी, "अनुसूची ए' मे वर्णित संपत्ति उनकी शाखा को आवंटित की गई थी, जो पूरी तरह से 1933 के विभाजन में मनिकम को आवंटित की गई थी। इस शेयर को बाद में मनिकम ने अलग कर दिया, और अंततः उनके भाई नारायणस्वामी ने इसे पुनः खरीद लिया। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि पूरी संपत्ति का 50% पज़ानिवेलु मुदलियार के बेटों के हिस्से में आ गया था और शेष 50% चोकलिंगम के पास रहा। इसमें कोई विवाद नहीं है कि वादी नारायणस्वामी मुदलियार के पोते हैं। इस प्रकार उन्हें 50% संपत्ति यानी 1.36 एकड़ जमीन विरासत में मिली है। ऐसा लगता है कि चोकलिंगम कर्ज में डूब गया था और उसकी संपत्ति को अदालती नीलामी के माध्यम से बिक्री के लिए लाया गया था। नीलाम दिनांक 21.12.1933 को आयोजित की गई थी और सुब्बाराया मुदलियार, यानी प्रतिवादी के पिता इस अदालती नीलामी में खरीदार थे। वर्ष 1940 में सुब्बाराय मुदलिया की मृत्यु हो गई और अपने पीछे प्रतिवादी को छोड गये। इस प्रकार, अदालती नीलामी में जो बेचा जा सका वह 2.72 एकड़ का केवल 50% था जो चोकलिंगम के पास था, यानी 1.36 एकड़।शेष 50% संपत्ति (अर्थात 'ए' अनुसूची) जो नारायणस्वामी और उनके परिवार के पास थी, अदालती नीलामी में नहीं बेची जा सकती थी। निष्पादन कार्यवाही पंजीकरण संख्या 2/33 में बिक्री की पुष्टि से संबंधित आदेश पहले विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया था और जिसे प्रदर्श अंकित किया गया, जिसमें अनुसूची की संपत्ति शामिल है। दुर्भाग्य से, किसी भी पक्ष ने ओएस नंबर 20/1918 में पारित फैसले को प्रस्तुत नहीं किया, जो अंततः ईपी नंबर 2/33 में अदालती बिक्री में समाप्त हुआ। इस प्रकार, यह न्यायालय सटीक रूप से यह कहने की स्थिति में नहीं है कि पूरी संपत्ति अदालती बिक्री का विषय थी या नहीं। जैसा कि हो सकता है, चूंकि चोकलिंगम निर्णित–ऋणी था, इसलिए अधिक से अधिक संपत्ति में उसका हिस्सा ही बेचा जा सकता था और खरीदार के लिए यह दावा करना संभव नहीं है कि उसने पूरी संपत्ति खरीदी है, हालांकि संपत्ति का केवल 50% हिस्सा ही उसका था। निर्णित–ऋणी, क्रेता को संपत्ति में विक्रेता के पास निहित अधिकार से अधिक अधिकार, स्वामित्व और हित नहीं मिल सकता है। अंततः क्रेता जोखिम लेता है, यदि वह ऐसी संपत्ति खरीदता है जो निर्णितऋणी की नहीं है।नीलामी बिक्री में

क्रेता स्वामित्व के सभी दोषों के अधीन संपत्ति लेता है, और कैविएट एम्प्टर (क्रेता को सावधान रहने दें) का सिद्धांत ऐसे क्रेता पर लागू होता है। इसलिए, यह मानते हुए भी कि अदालती नीलामी बिक्री पूरी संपत्ति के संबंध में की गई थी, यह नहीं कहा जा सकता कि ऐसी बिक्री पूरी सीमा तक वैध थी। अधिक से अधिक, यह कहा जा सकता है कि यह उस संपत्ति की सीमा तक वैध था जो निर्णितऋणी यानी श्री चोकलिंगम के स्वामित्व में थी , यानी 2.72 एकड़ में से 1.36 एकड़। शेष 50%, यानी अनुसूची 'ए' की संपत्ति का स्वामित्व नारायणस्वामी मुदलियार और उनके कानूनी प्रतिनिधियों के पास था।

6. जिस वाद से यह अपील उत्पन्न होती है वह मात्र विभाजन का वाद नहीं है। दूसरी ओर, मुख्य रूप से यह वाद संपत्ति पर वादी के अधिकार की घोषणा के लिए एक मुकदमा है, यानी, 'अनुसूची ए' मे वर्णित संपत्ति पर और प्रतिवादियों को "अनुसूची ए' मे वर्णित संपत्ति संपत्ति में प्रवेश करने से रोकने के लिए स्थायी निषेधाज्ञा है, जो कुछ भी नहीं है लेकिन पूरी 'अनुसूची बी मे वर्णित संपत्ति का 50% जो नारायणस्वामी मुदलियार के हिस्से में आया। वैकल्पिक रूप से, वादी द्वारा यह प्रार्थना की गई थी कि यदि वादी और प्रतिवादी का संयुक्त कब्जा पाया जाता है, तो उन्हें 'अनुसूची बी मे वर्णित संपत्ति में आधे हिस्से के विभाजन और अलग कब्जे की राहत दी जाए। यहां यह नोट करना प्रासंगिक है कि 'अनुसूची बी मे वर्णित संपत्ति पूरी तरह से 2.72 एकड है, जबकि 'अनुसूची ए मे वर्णित संपत्ति 'अनुसूची बी मे वर्णित संपत्ति का 50% है, जो 1.36 एकड़ है, जो 1912 का विभाजन के बाद नारायणस्वामी मुदलियार के हिस्से में आती है। चूंकि विभाजन 1912 में चोकलिंगम और नारायणस्वामी मुदलियार (पाज़ानिवेलु के पुत्र होने के नाते) के बीच हुआ था, और वादी को संपत्ति नारायणस्वामी मुदलियार से विरासत में मिली थी, इसलिए वे 'अनुसूची बी मे वर्णित संपत्ति में 50% हिस्सेदारी के हकदार हैं। डिवीजन बेंच ने सही माना है कि वादी 'अनुसूची ए मे वर्णित संपत्ति के हकदार हैं, जो कि 1912 के विभाजन में उनकी शाखा को 'अनुसूची बी मे वर्णित संपत्ति में से आवंटित आधा हिस्सा है। इस प्रकार, प्रतिवादी द्वारा उठाया गया पोषणीयता का प्रश्न विफल हो जाता है।

7. वादी को नीलामी बिक्री पर सवाल उठाने की ज़रूरत नहीं है जो 1933 में आयोजित की गई थी, क्योंकि सबसे पहले, वे निष्पादन कार्यवाही और अदालती नीलामी सहित उन कार्यवाहियों में पक्षकार नहीं हैं। दूसरे, नीलामी बिक्री के आधार पर, क्रेता को केवल चोकलिंगम के साथ निहित हिस्सा ही मिलेगा, क्योंकि चोकलिंगम अकेला निर्णितऋणी था। जो संपत्ति निर्णितऋणी के स्वामित्व में नहीं है, उसे बिल्कुल भी नहीं बेचा जा सकता है और इसलिए, यह मानते हुए भी कि पूरी संपत्ति के संबंध में बिक्री प्रमाण पत्र गलत तरीके से जारी किया गया है, यह वादी को बाध्य नहीं करता है क्योंकि वेपूरी संपत्ति का 50%. हिस्से के मालिक बने रहेंगे।

8. इसमें कोई संदेह नहीं है कि प्रतिवादी के पिता के खिलाफ मंदिर द्वारा दायर मुकदमे में, वादी के पिता को भी प्रतिवादी संख्या 2 के रूप में रखा गया था। यह भी विवाद में नहीं है कि वादी के पिता और प्रतिवादी के पिता ने एक संयुक्त वकील को नियुक्त करके एक सामान्य लिखित कथन दायर किया जिसमें दलील दी गई कि मंदिर संपत्ति का मालिक नहीं था और प्रतिवादी नंबर 1 संपत्ति का मालिक था। यह भी विवाद में नहीं है कि वादी के पिता ने उक्त मुकदमे में स्वीकार किया कि उक्त मुकदमे में प्रतिवादी नंबर 1, अर्थात्, इसमें प्रतिवादी के पिता, संपत्ति के मालिक थे। इसी तरह, स्कूल द्वारा दायर मुकदमे में, वादी के पिता को भी प्रतिवादी के पिता के साथ प्रतिवादी में से एक के रूप में सूचीबद्ध किया गया था। उक्त मुकदमे में भी एक संयुक्त लिखित कथन दाखिल किया गया था। यहां तक कि स्कूल द्वारा दायर मुकदमे में भी, प्रतिवादियों, यानी, यहां वादी के पिता और यहां प्रतिवादी के पिता ने संयुक्त रूप से दलील दी कि स्कूल संपत्ति का मालिक नहीं था और प्रतिवादी मालिक थे। मंदिर और स्कूल द्वारा दायर दोनों मुकदमे यह कहते हुए खारिज कर दिए गए कि मंदिर और स्कूल संपत्ति के मालिक नहीं थे। उपर्युक्त तथ्यों और दलीलों के साथ–साथ उक्त मुकदमों में दर्ज साक्ष्यों से, यह स्पष्ट है कि प्रतिवादियों के बीच कोई विवाद नहीं था। दूसरे शब्दों में, उन दोनो मुकदमों में वादी के पिता और प्रतिवादी के पिता के बीच स्वामित्व को लेकर कोई विवाद नहीं था। उन मुकदमों में तय किया जाने वाला मुख्य प्रश्न यह था कि क्या तीसरे पक्ष जिन्होंने अधिकारों का दावा किया था, वे संपत्ति के हकदार थे। चूँकि प्रतिवादी के पिता और वादी के पिता के बीच पारस्परिक स्वामित्व का प्रश्न मुद्दा नहीं था और तब उठाए गए विवादों में इस पर निर्णय लेने की भी आवश्यकता नहीं थी, जाहिर है, ऐसे सह–प्रतिवादियों के बीच पूर्व–न्याय का सिद्धांत लागू नहीं किया जा सकता है।

9. हालाँकि, ऐसी कुछ स्थितियाँ मौजूद हैं जिनमें सह–प्रतिवादियों के बीच पूर्व–न्याय के सिद्धांत लागू हो सकते हैं। इसे अंग्रेजी अदालतों के साथ–साथ हमारी अदालतों ने भी एक सदी से भी अधिक समय से मान्यता दी है। सह–प्रतिवादियों के बीच पूर्व–न्याय के सिद्धांत को लागू करने के लिए आवश्यक शर्तें हैं कि (ए) संबंधित प्रतिवादियों के बीच हितों का टकराव होना चाहिए, (बी) वादी को वह राहत देने के लिए इस संघर्ष का निर्णय करना आवश्यक होना चाहिए जिसका वह दावा करता है और (सी) प्रतिवादियों के बीच प्रश्न का अंतिम निर्णय हो चुका होगा। इस मामले में सभी तीन आवश्यक शर्तें मौजूद नहीं हैं। सबसे पहले, मंदिर और स्कूल द्वारा दायर मुकदमों में प्रतिवादियों के बीच हितों का कोई टकराव नहीं था । दूसरे, चूंकि कोई विवाद नहीं था, इसलिए मंदिर या स्कूल, जो वादी थे, को राहत देने के लिए उन मुकदमों में प्रतिवादियों के बीच किसी भी विवाद का निर्णय करना आवश्यक नहीं था। दूसरी ओर, वादी के पिता और प्रतिवादी के पिता मंदिर और स्कूल द्वारा दायर उन मुकदमों में मिलीभगत कर रहे थे। दोनों ने एकजुट होकर उन मुकदमों का विरोध किया । इसे देखते हुए, पूर्व न्यायिक सिद्धांत लागू नहीं होंगे। माउंट मुन्नी बनाम तिरलोकी नाथ, एआईआर 1931 पीसी 114 के मामले में प्रिवी काउंसिल ने पाया कि:–

" पूर्व–न्याय के सिद्धांत को धारा–11 सिविल प्रकिया संहिता, 1908 में जगह मिलती है, लेकिन इस बोर्ड द्वारा कई अवसरों पर यह माना गया है कि इसका बयान संपूर्ण नहीं है ; इसकी नवीनतम पहचान कालीपद दे बनाम द्विजपद दास [एआईआर 1980 पीसी 22] में मिलती है । सामान्य सिद्धांतों के लिए जिन पर सिद्धांत लागू किया जाना चाहिए, इस देश में निर्णयों को संदर्भित करना वैध है : देखे सोरजामोनी दयाई बनाम सुदामुंड महापत्तर [आईए सुप, वॉल्यूम 212], कृष्ण बिहारी रॉय बनाम बनवारी लाल रॉय [(1874) 1 कोल. 144], राजा रन बहादुर सिंह बनाम माउंट लाचू कोयर [(1885) 11 कल. 301]। अंग्रेजी न्यायालयों और भारतीय निर्णयों के लंबे दौर में सह– प्रतिवादियों के बीच न्यायिक निर्णय हो सकता है। जिन शर्तों के तहत सिद्धांत की इस शाखा को लागू किया जाना चाहिए, वे इस प्रकार विग्राम वीसी द्वारा कोटिंघम बनाम अर्ल ऑफ श्रुस्बरी [(1843) 3 हरे 627] 638 में बताई गई हैं:

"यदि कोई वादी सह–प्रतिवादियों के बीच किसी मामले की सुनवाई या निर्णय किए बिना अपना अधिकार प्राप्त नहीं कर सकता है, तो न्यायालय उस मामले का विचारण करेगा और निर्णय करेगा, और सह–प्रतिवादी बाध्य होंगे, लेकिन यदि वादी को दी गई राहत की आवश्यकता नहीं है या इसमें शामिल नहीं है सह–प्रतिवादियों के बीच किसी भी मामले का निर्णय, सह–प्रतिवादी किसी भी कार्यवाही द्वारा एक–दूसरे के बीच बाध्य नहीं होंगे जो केवल वादी द्वारा प्राप्त की गई डिग्री के लिए आवश्यक हो सकता है।

कानून के इस कथन को कई भारतीय मामलों में स्वीकार किया गया है और इसका पालन किया गया है: अहमद अली बनाम नजाबत खान [(1895) 18 इला. 65], रामचन्द्र नारायण बनाम नारायण महादेव [(1887) 11 बोम. 216], मगनीराम बनाम मेहदी हुसैन खान [(1904) 31 कल. 95]। यह, उनके आधिपत्य की राय में, धारा–11, सिविल प्रकिया संहिता के प्रावधानों के अनुरूप है, और वे इसे उन मामलों में सही मानदंड के रूप में अपनाते हैं जहां सह प्रतिवादियों के बीच पूर्व न्याय के नियम को लागू करने की मांग की जाती है। ऐसे मामले में तीन शर्तें अपेक्षित हैं: (1) संबंधित प्रतिवादियों के बीच हितों का टकराव होना चाहिए; (2) वादी को वह राहत देने के लिए जिसका वह दावा करता है, इस विवाद का निर्णय करना आवश्यक होना चाहिए; और (3) प्रतिवादियों के बीच प्रश्न का अंततः निर्णय हो गया होगा।"

(जोर दिया गया)

10. एक बार फिर, सैयद मोहम्मद सआदत अली खान बनाम मिर्जा विकर अली बेग और अन्य, एआईआर (30) 1943 प्रिवी काउंसिल 115 के मामले में इन्हीं सिद्धांतों को दोहराया गया, जिसमें निम्नलिखित टिप्पणियां की गईं:

"किसी निर्णय को संह–प्रतिवादियों के बीच न्यायिक निर्णय के रूप में संचालित करने के लिए तीन स्थितियाँ मौजूद होनी चाहिए: (1) उन सह–प्रतिवादियों के बीच हितों का टकराव होना चाहिए; (2)

वादी को उसके द्वारा दावा की गई राहत देने के लिए विवाद का निर्णय करना आवश्यक होना चाहिए; और (3) सह प्रतिवादियों के बीच प्रश्न का अंतिम निर्णय हो चुका होगा। इसमें कोई संदेह नहीं है कि विचाराधीन मामले में पहली और तीसरी शर्तें पूरी की गईं। क्या दूसरी शर्त अस्तित्व में थी, इस प्रश्न का उत्तर दिया जाना है। मुख्य न्यायालय ने माना कि उनके निर्णय के निम्नलिखित अंश में प्रकट होने वाले कारणों से इसका अस्तित्व नहीं है।

11. लगभग यही सिद्धांत चंदू लाल बनाम खलीलुर रहमान, एआईआर (37) 1950 प्रिवी काउंसिल 17 के मामले में दोहराए गए थे, जिसमें निम्नलिखित टिप्पणियाँ की गई थीं:

"मुन्नी बीबी और अन्य बनाम तिरलोकी नाथ में, 58 आई ए 158: [एआईआर (18) 1931 पीसी 114] पिछले मुकदमे में सह–प्रतिवादी रहे पक्षों के बीच पूर्व न्याय के सिद्धांत को लागू करने की शर्तें इस प्रकार निर्धारित की गई हैं: (1) सह–प्रतिवादियों के बीच हितों का टकराव होना चाहिए, (2) वादी को उचित राहत देने के लिए उस संघर्ष का निर्णय करने की आवश्यकता, और (3) सह–प्रतिवादियों के बीच उस प्रश्न का निर्णय। यह जोड़ा जा सकता है कि यह सिद्धांत तब भी लागू हो सकता है, भले ही जिस पक्ष के खिलाफ इसे लागू करने की मांग की गई है, उसने पिछले मुकदमे में उपस्थित होना और सवाल का विरोध करना उचित नहीं समझा। लेकिन इसमें यह योग्यता अवश्य जोड़ी जानी चाहिए कि, यदि ऐसे पक्ष को पिछले फैसले से बाध्य होना है, तो यह स्पष्ट रूप से साबित किया जाना चाहिए कि उसे नोटिस था या समझा जाना चाहिए कि प्रासंगिक प्रश्न विचाराधीन है और उस पर निर्णय लेना होगा।"

(जोर दिया गया)

मोहम्मद सआदत अली (सुप्रा) के मामले में, हालांकि पहली और तीसरी शर्तें पूरी हो गई थीं, दूसरी शर्त पूरी नहीं हुई थी और इसलिए यह माना गया कि पुनर्न्याय के सिद्धांत लागू नहीं होंगे, जिसका अर्थ है कि सभी पुनर्न्याय के सिद्धांतों को लागू करने के लिए तीन शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए।

12. यह सच है कि सिविल प्रकिया संहिता, की धारा 11 के तहत, जब मामला सीधे तौर पर या काफी हद तक उन्हीं पार्टियों के बीच या उन पार्टियों के बीच चल रहा हो, जिनके तहत वे या उनमें से कोई दावा करता है, उसी शीर्षक के तहत मुकदमा कर रहा है। पूर्व मुकदमे में डिक्री वादी और प्रतिवादी के बीच या सह–वादी या सह–प्रतिवादी के बीच न्यायिक न्याय के रूप में कार्य करेगी। उदाहरण के लिए, यदि पी द्वारा डी1 और डी2 के खिलाफ किसी मुकदमे में, मामला सीधे तौर पर और काफी हद तक डी1 और डी2 के बीच है और पी को राहत देने के लिए मुकदमे का निर्धारण करने के लिए उस मामले पर निर्णय आवश्यक था, तो निर्णय न्यायिक निर्णय के रूप में कार्य करेगा। डी1 और डी2 के बीच के बाद के मुकदमों में जिनमें से कोई एक वादी या प्रतिवादी है। दूसरे शब्दों में, यदि कोई वादी सह–प्रतिवादियों के बीच मामले की सुनवाई और निर्णय किए बिना अपनी दावा की गई राहत नहीं पा सकता है, तो अदालत मामले की पूरी कोशिश करेगी और निर्णय करेगी, जिसमें सह–प्रतिवादियों के बीच हितों का टकराव भी शामिल होगा। तो सह–प्रतिवादी डिक्री से बाध्य होगे। लेकिन यदि वादी को दी गई राहत में सह–प्रतिवादियों के बीच किसी मामले के निर्णय की आवश्यकता नहीं है या इसमें शामिल नहीं है, तो सह–प्रतिवादियों को एक–दूसरे के बीच बाध्य नहीं किया जाएगा। इस न्यायालय ने महबूब साहब बनाम सैयद इस्माइल और अन्य, (1995) 3 एससीसी 693 के मामले में, सह–प्रतिवादियों के बीच पूर्व–न्याय के सिद्धांत की प्रयोज्यता पर विचार करते हुए कहा कि निम्नलिखित चार शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए, अर्थात्,

"(1) वहां संबंधित प्रतिवादियों के बीच हितों का टकराव होना चाहिए;

(2) वादी द्वारा दावा की गई राहत देने के लिए संघर्ष का निर्णय करना आवश्यक होना चाहिए;

(3) प्रतिवादियों के बीच प्रश्न का अंतिम निर्णय हो चुका होगा; और

(4) सह–प्रतिवादी पूर्व मुकदमे में आवश्यक या उचित पक्ष थे।

उपरोक्त निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए, इस न्यायालय ने सैयद के मामलों के निर्णयों पर भरोसा किया। मो. सआदत अली खान बनाम मिर्जा विकर अली बेग, एआईआर 1943 पीसी 115; शशिभूषण प्रसाद मिश्रा

बनाम बाबूजी राय, एआईआर 1970 एससी 809 और इफ्तिखार अहमद बनाम सैयद मेहरबान अली, (1974) 2 एससीसी 151.

13. प्रतिवादी के वकील द्वारा वाद–विवाद में वादी के पिता की स्वीकारोक्ति और उपरोक्त पहले के मुकदमों में प्रतिवादी के पिता के शीर्षक के संबंध में उनके बयान के आधार पर विबंधन के प्रश्न पर आते हुए, इसमें कोई संदेह नहीं है सच है कि स्वीकारोक्ति सबसे अच्छा सबूत है। हालाँकि, किसी स्वीकारोक्ति को हमेशा समझाया जा सकता है, जब तक कि ऐसा स्वीकारोक्ति विबंधन के सिद्धांत को जन्म न दे। विबंध का सिद्धांत तब उत्पन्न हो सकता था यदि प्रतिवादी के पिता ने वादी के पिता द्वारा किए गए अभ्यावेदन के आधार पर उसके नुकसान के लिए कार्य किया होता, विबंध के सिद्धांत को आकर्षित करने के लिए बुनियादी आवश्यकता यह है कि वह व्यक्ति जिसके लिए अभ्यावेदन है ऐसा किया गया है कि उसने इस तरह के प्रतिनिधित्व के आधार पर और विशेष रूप से अपने स्वयं के नुकसान के आधार पर कार्य किया होगा। मौजूदा मामले में, प्रतिवादी के पिता को तथ्यों पर सही स्थिति के बारे में पता था और वह अच्छी तरह से जानते थे कि वह केवल 50% संपत्ति का मालिक था, और चूंकि उन्होंने अपने नुकसान के लिए कोई कार्य नहीं किया था, विबंध का सवाल ही नहीं उठता। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, यह अच्छी तरह से स्थापित है कि नीलामी खरीद में, नीलामी खरीदार को निर्णय देनदार की तुलना में अधिक संपत्ति पर कोई अधिकार प्राप्त नहीं होता है। चूंकि इस मामले में सह–प्रतिवादीयो के बीच पूर्व–न्याय के सिद्धांत लागू नहीं होते हैं, और चूंकि केवल स्वीकारोक्ति एक विबंध के रूप में काम नहीं करता है, ऐसे विबंध से प्रतिवादी के पिता के पक्ष में और परिणामस्वरूप प्रतिवादी को कोई स्वामित्व नहीं बनता या पारित नहीं होता है। दूसरी ओर, यह स्पष्ट है कि प्रतिवादी के पिता के पास प्रश्नगत संपत्ति के केवल आधे हिस्से पर अधिकार था, जिसे उन्होंने खरीदा था।

14. डिवीजन बेंच ने प्रतिकूल कब्जे से संबंधित प्रतिवादी के तर्क को सही ढंग से खारिज कर दिया है। रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों से, विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि प्रतिवादी यह साबित करने में विफल रहा है कि वादी और उनके पूर्ववर्ती को छोड़कर पूरी संपत्ति पर उसका और उसके पूर्ववर्ती का कब्जा था। रिकॉर्ड पर ऐसा कोई साक्ष्य नहीं मिला है जो सशक्त रूप से खुलासा करता हो कि संपत्ति के कब्जे की भौतिक डिलीवरी वादी के पिता और वादी सहित सभी व्यक्तियों को बेदखल करके या बाहर करके नीलामी क्रेता को दी गई थी । ऐसे साक्ष्यों के अभाव में, विचारण न्यायालय और डिवीजन बेंच ने सही निष्कर्ष निकाला है कि नीलामी क्रेता के पक्ष में कब्जे की प्रतीकात्मक डिलीवरी हुई थी। हालाँकि, बाद के दस्तावेज़ वादी और प्रतिवादी का संयुक्त कब्ज़ा दर्शाते हैं। अब भी राजस्व अभिलेखों में दोनों पक्षों के नाम दर्ज हैं। दस्तावेज़ किसी भी पक्ष का विशेष कब्ज़ा नहीं दिखाते हैं, लेकिन यह संकेत देंगे कि उनका संयुक्त कब्ज़ा है।प्रदर्श ए–7, ए–8 और ए–9 ऐसे पट्टे हैं जो राजस्व रिकॉर्ड में दोनों पक्षों के नामों का खुलासा करते हैं। यहां तक कि गृहकर रसीदें भी वादी के पूर्ववर्ती के नाम पर हैं। नारायणस्वामी मुदलियार की मृत्यु के बाद 'ए अनुसूची' की संपत्ति पहले से ही वादी के बीच परस्पर विभाजन के अधीन हो चुकी है और प्रश्न में संपत्ति का आवंटन, यानी 'ए अनुसूची' प्रदर्श ए–40 के अनुसार दूसरे वादी के पक्ष में किया गया है। उपर्युक्त रिकॉर्ड और रिकॉर्ड पर मौजूद कुछ अन्य सामग्री प्रतिकूल कब्जे से संबंधित प्रतिवादी के तर्क को नकारात्मक कर देगी। वादी ने संतोषजनक ढंग से साबित कर दिया है कि वे 'ए अनुसूची' की संपत्ति के मालिक हैं, यानी, 1912 में विभाजित संपत्ति का 50%, जो अंततः श्री नारायणस्वामी (वादी के दादा) के हिस्से में आया था, जैसा कि ऊपर बताया गया है।

15. इसके मद्देनजर, हमें एलपीए संख्या 70/2002 दिनांक 29.01.2007 में पारित उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच के आक्षेपित फैसले में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं मिलता है। तदनुसार तत्काल अपील विफल हो जाती है और इसे खारिज किया जाता है।

<u>केस कानून संदर्भ</u>

एआईआर 1931 पीसी 114	पैरा 9
एआईआर (30) 1943 प्रिवी काउंसिल 115	पैरा 10
एआईआर (37) 1950 प्रिवी काउंसिल 17	पैरा 11

(1995) 3 एससीसी 693 पैरा 12

एआईआर 1943 पीसी 115 पैरा 12

एआईआर 1970 एससी 809 पैरा 12

[1974] 3 एससीआर 464 पैरा 12

Kuldeep